International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 484-485

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 484-485
www.allresearchjournal.com
Received: 26-11-2018
Accepted: 28-12-2018

शम्भू पासवान
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
शम्भू पासवान
शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

उषाकिरण खान : 'भामती' उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियों का यथार्थ–चित्रण

शम्भू पासवान

सारांश
ज्ञान संवर्द्धन के सभी अनुशासनों का साहित्य में रूपांकन उषाकिरण खान के रचना–कर्म का शगल है। उषा जी साहित्यिक विधा के सहारे इतिहास, धर्म, दर्शन और विज्ञान की सभी शाखाओं से पाठक को परिचित कराती हैं। वे कथ्य और शिल्प के चयन में बहुत सावधानी बरतती हैं, जिसके कारण उनकी रचनाधर्मिता का विश्लेषण सम्पूर्णता में ही सम्भव हो पाता है। 'भामती' उषा जी का अप्रतिम उपन्यास है। वे भामती को केन्द्र में स्थापित कर मिथिला के लोकजीवन, इतिहास, क्षेत्रीय विशेषताओं, सामाजिक–राजनैतिक जीवन के साथ ही सम्पूर्ण सांस्कृतिक विरासत को उद्घाटित करती हैं। भामती के नायक वाचस्पति मिश्र सनातन और सातत्य के प्रतीक हैं, जो परिवर्तन के स्थान पर एक धुरी की तरह अटल हैं। उषा जी भामती के सहारे नारी मन की व्यथा को संकेतित करती हैं। वे नारी–विमर्श की आधुनिक स्थापना को निरूपित नहीं करती बल्कि प्राचीन मैथिल समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा को लेकर प्रश्न पूछती हैं। वाचस्पति ने अठारह वर्ष के कठिन श्रम और एकांकिक अध्ययन के पश्चात् 'शंकर भाष्य' पुस्तिका पूर्ण की, तदोपरान्त पत्नी–प्रेम के प्रतिदान में पुस्तिका का नामकरण भामती रखा है। इस सम्पूर्ण प्रकरण में स्त्री के दैहिक–विमर्श से इतर उच्च साहित्यिक विमर्श का प्रतिपादन है। यह उपन्यास ऐतिहासिक आख्यान रचकर उस काल की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों का लेखा–जोखा है। उसमें सन्निहित मूल्य–प्रतिमान, आदर्श और सामाजिक चेतना उपस्थित हैं।

मुख्य–शब्दः उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, इतिहास, धर्म

प्रस्तावना
शायद 'भामती' के नायक वाचस्पति मिश्र जान रह थे कि इस संक्रमणकाल में जब बौद्ध मत की प्रचंडता और प्रवाह की गति मंद पड़ रही है, तब वे भी आदि शंकर के विचारों को नयी विवेचना से और सशक्त कर दें तो सभवतः एक ओर बौद्ध मतावलंबियों तथा, दूसरी ओर इस्लाम के संभावित प्रहार से अपने प्राचीनतम सनातन धर्म या भारतीय संस्कृति को सातत्य प्रदान करने वाले इस मत की रक्षा सफलतापूर्वक कर सके। सर्वप्रथम उन्होंने मंडन मिश्र द्वारा रचित, 'विधि विवेक' का टीका लिखा था। फिर उन्हीं की पुस्तक 'ब्रह्मसिद्धि' की व्याख्या लिखी। तत्पश्चात 'ब्रह्मतत्व समीक्षा' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें पूर्ववर्ती विद्वानों के दार्शनिक विचारों का संकलन था। छह माह में यह दुरूह कार्य संपन्न करके, 'मीमांसा दर्शन' की पुस्तक, 'तत्व बिंदु' की रचना की। फिर न्यायशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी, 'न्याय सूची निबंध' और संतुष्ट न होकर रच डाली, 'न्याय वार्तिक' पर टीका। इन तमाम ग्रंथों के अतिरिक्त उन्होंने 'ब्रह्म सूत्र' की टीका लिखी।
'भामती' में आपको इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और विज्ञान (उसमें भी औषधि एवं रसायन–शास्त्र) तक की अंतर्धारा प्रवाहित होती दिखेगी। आने वाली नस्लें जरूर इसे एक कालजयी रचना मानेगी, क्योंकि इसमें शैलीगत विशेषता और शिल्प–विधान के साथ ही रचनाकार का अपने काल के साथ ही विद्यापति मिश्र के काल की जो अंतर्धारा और अंतक्रिया है, वह उन्हें उपन्यासकारों में निश्चित ही एक अलग, उच्च एवं अप्रतिम स्थान दिला जायेगा। संभवतः इतिहास और संस्कृति के अध्ययन के चलते यह सहज हो पाता है कि रचनाकार अपने शिल्प–विधान के माध्यम से कथा के दौरान ही अपने काल–खंड में रहते हुए अतीत के काल–खंड को न केवल सजीव रूप से चित्रित कर पाती हैं अपितु उसमें सांस लेती दिखती हैं और फिर उस व्यापक कैनवास को संतलित ढंग से समेटने के साथ ही उसकी आधुनिक व्याख्या करने में भी सक्षम होती हैं। इन सबके साथ न्याय कर पाना कत्तई सहज नहीं है। फिर भी, उषाकिरण खान इसमें संभव होती हैं।
जब वे दर्शन के विषय पर लिख रही होती हैं तब ऐसा लगता है कि कोई दर्शन का गहन अध्येता सरल भाषा में पाठकों के समक्ष उस ज्ञान को सहज परोस दे रहा है। हम सब जानते हैं कि यह काम बहुत ही कठिन है।

दर्शन को आम पाठकों के लिए बोधगम्य बनाना निश्चित ही टेढ़ी खीर है जिसमे वे सफल होती हैं! इतना ही नहीं, इतिहास की शोधकर्ता और अध्यापिका होकर इतिहास, समाज, संस्कृति के विषय में इतनी सूक्ष्म दृष्टि तो समझ आती है परन्तु विज्ञान और वह भी औषधि–शास्त्र या रसायन के बारीक तत्वों पर भी जब वे आधिकारिक रूप से लिखती हैं तब एक पूर्ण विदुषी सी प्रतीत होती हैं, हमें सहज ही यूरोपीय पुनर्जागरण–कालीन कलाकार स्मरण हो आते हैं जो लगभग सभी विषयों में निष्णात होते थे।

वे अपनी बात प्रस्तावना में, 'मेरा कहना है' शीर्षक के साथ रखते हुए लिखती हैं: ''मिथिला में भामती सीता के बाद सबसे परिचित तथा लोकप्रिय पात्र हैं।''(1) इस उपन्यास के बाद तो हम मान सकते हैं कि वे अपने उपन्यास के लेखन द्वारा अपनी इस स्थापना को प्रमाणित करने एवं जन–जन में प्रचलित करने में पूर्णतः सफल हुई हैं! वे इसी प्रस्तावना में नागार्जुन और अपने गुरु प्रोफेसर उपेन्द्र ठाकुर के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हैं, जिन्होंने भामती के चरित्र को समझने में उन्हें एक अंतर्दृष्टि प्रदान की। इनमें से प्रथम चोटी के साहित्यकार थे तो दूसरे प्रसिद्ध इतिहासकार। दोनों की अंतर्दृष्टियों एवं दूरदृष्टियों के सम्मिश्रण से ही यह 'ऐतिहासिक उपन्यास' के निश्चित स्वरूप ग्रहण कर सका। आईये एक उदाहरण शुद्ध राजनीतिक जीवन और व्यवस्था पर उनकी टिप्पणी का भी दिया जाये। वे मिथिला पर बंगाल के शासकों की गिद्ध दृष्टि की चर्चा करते हुए लिखती हैं; ''रजा नृग का सिंहासन सदा डोलता रहता। विग्रहपाल जो सम्राट था उसके निर्बल होने के कारण छोटे–छोटे स्थल पर सिंहासन सज गया था।'' या ''पहले बंग प्रदेश उत्कल और अंग संभाल ली तब न मिथिला की और बढ़ेंगे?''(2) आदि सामन्तों द्वारा अपने से छोटे सामंतों को भू–अनुदान प्रदान करने की प्रक्रिया को आर्थिक–इतिहासकार 'उप–सामंतता' (sub-infeudation) कहते हैं। इस पूरी प्रक्रिया को इतने सरल ढंग से पाठकों के लिए ग्राह्य या उन्हें इससे बेहतर ढंग से नहीं समझाया जा सकता था। वास्तव में यही पूर्व मध्यकालीन भारत की विशेषता है। इसी समाजार्थिक आधार पर शेष व्यवस्थाएं टिकी थीं!

इतना ही नहीं, इस्लाम के अनुयायियों विशेष रूप से बख्तियार खिलजी के नेतृत्व में मोहम्मद गोरी की सेनाओं ने कैसे हिन्दू देवालयों, बौद्ध विहारों को जला कर नष्ट किया था, उसका भी उल्लेख और धार्मिक उत्साह के साथ उसके वैज्ञानिक विश्लेषण की भी झलक महत्वपूर्ण है: ''(पुस्तकालय) सुरक्षित कहाँ रहता है? राजा की हार यदि एक ही मत–मतान्तर वाले राजा से हो तब अलग बात है परन्तु यदि विधर्मी तथा अन्य मतावलंबी से हुई तो सबसे पहले पुस्तकालयों को जलाकर स्वाहा करते हैं। ज्ञान को विलुप्त कर दिया जाये, मनुष्य जाति स्वयं प्रजा हो जाएगी क्योंकि ज्ञान किसी की प्रजा नहीं।''(3) वे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर नजर डालते हुए अपने पाठकों को काल–खंड में कथा को अवस्थित करने की गरज से लिखती हैं: ''(बंगाल में) पाल वंश ने अपनी अंतिम सांस छोड़ दी, अब.....अन्धकार फैल गया. सेन वंश का राज्य स्थापित हो गया था। सेन सम्राट दक्षिण पूर्व तथा दक्षिण पश्चिम की समस्या में उलझे हुए थे। पश्चिमोत्तर प्रान्त की और आने का अवकाश कहाँ था.....''(4)

सबसे पहले हमें राजगुरुओं और विद्वानों के अंतर को समझाते हुए, लेखिका लिखती हैं कि कैसे वाचस्पति की माता के अल्पायु में मृत्यु के चलते, उनके मामा–मामी ननिहाल ले जाना चाहते थे किन्तु उनके पिता दृढ़ता से निश्चय कर चुके थे कि वाचस्पति को विद्वान ही बनाना है, ''नहीं, मैं अपने बालक को मिथिला की परंपरा के योग्य विद्वान के रूप में देखना चाहता हूँ। आपके पास जायेगा तो चमचमाता पाग धारण करेगा, चीनांशुक उत्तरीय और अधोवस्त्र से शोभित होगा किन्तु, मीमांसा और दर्शन से दूर चला जायेगा,''(5) हमें परिवेश का स्मरण कराते हुए, वे एक बहाने से लिखती हैं कि कैसे वाचस्पति त्रिलोचन गुरु के आश्रम अध्ययन हेतु गए, तब गुरु ने क्या कहा: ''आओ बालक, मेरे शिष्य बनो और आपदाग्रस्त सनातन धर्म की रक्षा करो, अवातर विचार का विदा दो पूर्व वर्ष मंडन मिश्र की परंपरा को आगे ले चलने में सक्षम होगा।''(6) अथान बिल्कुल प्रारम्भ में ही वे अपने उपन्यास की दशा दिशा के साथ अपने चरित नायक के विकास की दिशा और गति की और भी दशा कर देती है।

लेखिका एक स्त्री है और अपने इतिहास की अध्येता होने का परिचय देते हुए अपने प्रिय विषय की ओर पलटती है और पूरी शिद्दत के साथ एतिहासिक तथ्यों को उद्घाटित करती है: ''वेदकाल में स्त्रीगण का स्वाभाविक वर्चस्व था.....वह सृजनकर्त्री थी, वह तोप परितोष देने वाली थी। सभवतः पितृ समाज, जो आहिस्ता–आहिस्ता साकाक्ष हुए थे वे अपने को हीन समझने लगे थे इसलिए क्रमशः स्त्रीगण को घर और संतान तक ही केन्द्रित और सीमित किया गया। थोड़ी–सी स्त्रियाँ गुरुकुल जाने वाली बच गई थीं। विपीन काल आन पर उसमें भी वाधा पड़ गई।''(7)

निष्कर्ष :

उपाकिरण खान जब भी मिथिला की माटी की कोई कहानी उठानी है तो वे उस में रच–बस जाती है, खासतौर से अगर ये कहानियाँ रचना और उपन्यास पूर्व मध्य काल के सक्रमण की दास्ताँ कहते या चित्रित करते हो। उषा जी की इस विषय पर पकड़ जबरदस्त है। वे इस पूरे क्षेत्र की इस कालावधि के लोकजीवन, इतिहास, क्षेत्रीय विशेषताओं, सामाजिक जीवन, राजनीतिक खीच–तान, आर्थिक परिस्थितियों के साथ–साथ, तीज–त्यौहार, रीति–रिवाज परपराओं को समेटने में सक्ष्म ही नहीं होती अपितु, उनके उपन्यासों में जान फूक देते है। इसीलिए ये रचनायें 'कालजयी' सी हो जाती हैं। चाहे, 'सिरजनहार' हो अथवा 'भामती'। पहला उपन्यास यदि विद्यापति ठाकुर के जीवन पर केन्द्रित है तो 'भामती' वाचस्पति मिश्र और उनकी पत्नी पर केन्द्रित है! दोनों ही इसी दौर के मिथिला के विद्वान व्यक्तित्व है। विद्यापति स्थानीय भाषा के आग्रही थे तो वाचस्पति मिश्र संस्कृत के साथ–साथ सनातन हिन्दू धर्म के घोर आग्रही। जहाँ विद्यापति बदलते परिवंश के प्रतिनिधि हैं। वहीं वाचस्पति मिश्र सनातन और सातत्य के प्रतीक है, जो परिवर्तन के स्थान पर एक धुरी की तरह अटल है।

संदर्भ–सूची :

1. कुमार वरूण (सम्पादक) उषाहिंडोला, प्रथम संस्करण 2019, अमन प्रकाशन, कानपुर, उत्तर प्रदेश, पृ.– 92
2. कोहली नरेन्द्र, हिन्दी उपन्यास सृजन सिद्धान्त, वाणी प्रकाशन, 2015, तृतीय संस्करण, नई दिल्ली, पृ.– 04
3. भामती, मंच प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण– 2007, पृ.– 69
4. वही, पृ.– 75
5. वही, पृ.– 143
6. वही, पृ.– 172
7. कुमार वरूण (सम्पादक) उषाहिंडोला, प्रथम संस्करण 2019, अमन प्रकाशन, कानपुर, उत्तर प्रदेश, पृ.– 92